कान्ता रॉय

ई-मेलroy.kanta69@gmail.com

प्यार

पति को आफिस के लिये विदा करके, सुबह की भाग-दौड़ निपटा पढ़ने को अखबार उठाया कि डोर बेल बज उठी।

"इस वक्त कौन हो सकता है!" सोचते हुए दरवाजा खोला। उसे साँप सूँघ गया। पल भर के लिये जैसे पूरी धरती ही हिल गई। सामने प्रतीक खड़ा था।

"यहाँ कैसे ?" खुद को संयत करते हुए बस इतने ही शब्द उसके काँपते हुए होठों पर आकर ठहरे थे।

"बनारस से हैदराबाद तुमको ढूँढते हुए बामुश्किल पहुँचा हूँ।" वह बेतरतीब-सा हो रहा था। सजीला-सा प्रतीक जैसे कहीं खो गया था।

"आओ अंदर, बैठो, मै पानी लाती हूँ।"

"नहीं, मुझे पानी नहीं चाहिए, मैं तुम्हें लेने आया हूँ, चलो मेरे साथ।"

"मैं कहाँ, मैं अब नहीं चल सकती कहीं भी।"

"क्यों, तुम तो मुझसे प्यार करती हो ना!"

"प्यार ! शायद दोस्ती के लिहाज़ से करती हूँ।"

"तुम्हारी शादी जबरदस्ती हुई है। हमें अलग किया गया है। तुम सिर्फ मुझे प्यार करती हो।"

"नहीं, तुम गलत सोच रहे हो प्रतीक। मैं उस वक्त भी तुमसे अधिक अपने मम्मी- पापा से प्यार करती थी, इसलिए तो उनके प्यार के आगे तुम्हारे प्यार का वजूद कमजोर पड़ गया था।"

"लेकिन जिस इंसान से तुम्हारी शादी हुई उससे प्यार...।"

"बस, अब आगे कुछ न कहना, वे मेरे पति हैं और मैं सबसे अधिक उन्हीं से प्यार करती हूँ। उनसे मेरा जन्मों का नाता है।"

"और मैं, मैं कहाँ हूँ?"

"तुम दोस्त हो, तुम परिकथाओं के राजकुमार रहे हो मेरे लिए, जो महज कथाओं तक ही सिमटे रहते हैं, हकीकत से कहीं कोसों दूर।"

"अच्छा, तो अब चलता हूँ। तुमसे एकबार मिलना था सो मिल लिया।" बाहर आकर जेब में हाथ डाल टिकट फाड़ कर वहीं फेंक, बिना पलटे निकल गया और वह जाते हुए उसे अपलक उसके ओझल होने तक यूँ ही देर तक ठिठकी निहारती रही।